

## nfyr foe'kz dk vFkZ vkj vFkbUkk

&doy Hkkjrh

दलित विमर्श क्या है? इसकी अर्थवत्ता क्या है? इसे मैं कबीर के एक पद से आपको समझाने की कोशिश करता हूँ। यह पद है—

गर्भ बास महि कुल नहि जाती ।

ब्रह्म बिंदु ते सब उतपाती ।।

जौ तू ब्राह्मण ब्राह्मणी जाया ।

तौ आन बाट काहे नहिं आया ।

तुम कत ब्राह्मण हम कत शूद ।

हम कत लोहू तुम कत दूध ।।

कहु कबीर जो ब्रह्म विचारै ।

सो ब्राह्मण कहियत है हमारे ।।

इस पद से हम सीधे विषय में प्रवेश करते हैं। कबीर का यह पद सीधे-सीधे ब्राह्मण को संबोधित है। इस पद को समझाने से पहले यह बता दिया जाय कि यहां कबीर और ब्राह्मण दो अलग-अलग विचार के रूप में आते हैं। जिस तरह दो कौमों (राष्ट्रों) और नस्लों में सामाजिक अलगाव होता है, उसी तरह का सामाजिक अलगाव दलित और ब्राह्मण के बीच है। पर वास्तव में दलित और ब्राह्मण न तो दो अलग-अलग राष्ट्र हैं न दो अलग-अलग नस्लें। ये अलग-अलग वर्ण और जातियां हैं। और, यह हम आगे देखेंगे कि ये दोनों एक ही नस्ल के हैं। इसलिए दोनों के बीच जो सामाजिक अलगाव है, जो ऊँच-नीच का भेदभाव है, उसका कोई तर्कसंगत और वैज्ञानिक आधार नहीं है। यह पूरी तरह से अमानवीय व्यवस्था है, जो ब्राह्मण ने धर्म के आधार पर खड़ी की है। ब्राह्मण ने इसे धर्म-संहिता का रूप दिया। इस धर्म-संहिता में, जो वर्ण व्यवस्था के नाम से प्रचलित है, ब्राह्मण सर्वोपरि है, दूसरे स्थान पर क्षत्रिय है और तीसरे स्थान पर वैश्य है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को द्विज कहा जाता है। द्विज का अर्थ है दूसरा जन्म। यह दूसरा जन्म 'उपनयन संस्कार' को कहा गया है। उपनयन संस्कार, अर्थात् जनेऊ संस्कार केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का होता है। इसी उपनयन अर्थात् दूसरे जन्म के कारण उन्हें द्विज कहा जाता है।

चौथे स्थान पर अर्थात् निम्न अवस्था में शूद्र आते हैं। इनका उपनयन संस्कार नहीं होता। इसलिए ये दूसरे जन्म से वंचित हैं। वर्णव्यवस्था में इनका कार्य और मुख्य धर्म द्विजों की ही सेवा करना है। पढ़ना-लिखना, स्वतंत्र होकर व्यवसाय करना, धन अर्जित करना और शस्त्र धारण करना इनके लिए प्रतिबंधित है।

इस प्रकार संस्कार से द्विज उच्च और जन्म से शूद्र नीच की अवधारणा (जन्मना जायते शूद्र संस्कारात् जायते, द्विज उच्चते) ने जाति-व्यवस्था का निर्माण किया। पहले उपनयन-संस्कार का कार्य गुरु के अधीन था। गुरु बालक की परीक्षा कर उसका वर्ण निर्धारण करता था। पर, मनु ने इस व्यवस्था को उलट दिया। उसने उपनयन करने का अधिकार गुरु से छीन कर बालक के पिता को दे दिया। तब से पिता स्वयं बालक का वर्ण निर्धारण करने लगा। इसी समय से इस व्यवस्था में गुण-कर्म महत्वहीन और जन्म महत्वपूर्ण हो गया।

llkjrhl; nfyrl l kfgR; %foopuk

अब आप कबीर के पद को समझ सके हैं, जो इसी जन्मना व्यवस्था के विरुद्ध है। कबीर कहते हैं, यदि ईश्वर से ही सब पैदा हुए हैं, तो गर्भवास में न कोई जाति होती है और न कुल होता है। एक दूसरे तर्क से कबीर कहते हैं कि यदि मां की जाति से गर्भवास में पलने वाले की भी जाति तय हो जाती है, तो जन्म की प्रक्रिया एक—सी क्यों है? यदि ब्राह्मण यह मानता है कि वह ब्राह्मणी के पेट से पैदा हुआ है, तो वह किसी भिन्न प्रक्रिया अर्थात् किसी दूसरे रास्ते से पैदा क्यों नहीं हुआ? किंतु जब सारे मनुष्य एक ही प्रक्रिया से पैदा होते हैं, तो कबीर पूछते हैं कि फिर तुम ब्राह्मण कैसे हो गए और हम शूद्र कैसे हो गए? जन्म से कोई ब्राह्मण—शूद्र नहीं है, क्योंकि सबके जन्म की एक ही प्रक्रिया है। यदि दूसरे जन्म यानी उपनयन संस्कार से तुम ब्राह्मण हो तो यह दूसरा जन्म हमारा क्यों नहीं हुआ? अर्थात् उपनयन संस्कार से हम क्यों नहीं ब्राह्मण हो सकते? यहां कबीर के एक अन्य पद का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। वह पद ब्राह्मण—स्त्री के बारे में है। कबीर कहते हैं कि तुम तो जनेऊ पहिन कर ब्राह्मण हो गए। पर तुमने अपनी स्त्री को तो जनेऊ नहीं पहिनाया, उसका तो तुमने उपनयन संस्कार नहीं किया, वह तो द्विज नहीं हुई, वह शूद्र ही है। फिर उसके हाथ का बना भोजन क्यों करते हो? कबीर का यह पद इस प्रकार है — ‘पहिरि जनेऊ जो ब्राह्मण होना मेहरि क्या पहिराया। वह तो जनम की सूद्रिन परसै तुम पांडे क्यों खाया।’ इसलिए, जब सब कुछ समान है, तो कबीर कहते हैं कि हमारे शरीर में खून और तुम्हारे शरीर में दूध कैसे हो सकता है? और, अंत में कबीर बड़ी क्रांतिकारी बात करते हैं कि ब्राह्मण न जन्म से होता है और न जनेऊ से होता है। ब्राह्मण तो वह है, जिसमें ब्रह्म है।

ब्रह्म को लेकर कबीर के यहां कोई भ्रम नहीं है। वहां चित्त की शुद्धि और ‘आत्म राम’ ही ब्रह्म है। दूसरे शब्दों में, मानव की प्रतिष्ठा कबीर का अभीष्ट है और यही दलित विमर्श का अर्थ है।

nfyrl foe'kl dl vFkbÜkk

इससे एक बात यह साफ हो जाती है कि दलित विमर्श सिर्फ एक जाति का विमर्श नहीं है, जैसी कि आम धारणा है कि किसी दलित समस्या को लेकर किया गया विमर्श ही दलित विमर्श है। यह धारणा गलत है। दलित विमर्श के केंद्र में दलित समस्या को नहीं नकारा जा सकता। पर यह समस्या एक राष्ट्रीय समस्या के रूप में है। इसके केंद्र में दलित मुक्ति का प्रश्न राष्ट्रीय मुक्ति का प्रश्न है। करोड़ों लोगों के लिए अलगाववाद का जो समाजशास्त्र और धर्मशास्त्र ब्राह्मणों ने निर्मित किया, उसे राष्ट्रीयता को खंडित किया था और उसी के कारण भारत अपनी स्वाधीनता खो बैठा था।

इसलिए दलित विमर्श के केंद्र में वे सारे सवाल हैं, जिनका संबंध भेदभाव से है, चाहे यह भेदभाव जाति के आधार पर हो, रंग के आधार पर हो, नस्ल के आधार पर हो, लिंग के आधार पर हो या फिर धर्म के ही आधार पर क्यों न हो।

देखने में यह सवाल साधारण—सा लगता है, पर यह साधारण सवाल नहीं है। यह अत्यंत गंभीर और असाधारण सवाल है, क्योंकि इसी सवाल को निरर्थक और महत्वहीन करने की सारी कोशिशें ब्राह्मण वर्ग द्वारा की गई हैं। ये कोशिशें अकारण नहीं की गई हैं, वरन इनके पीछे सांस्कृतिक फासीवाद और वर्णव्यवस्था का शासन स्थापित करने का लक्ष्य रहा है।

हम इस सवाल को इस तरह समझें। शूद्रों के अतिरिक्त भारत में तीन वर्ग और हैं—1. तथाकथित जरायम पेशा जातियां, 2. आदिम जनजातियां और 3. अछूत जातियां। इन तीनों वर्गों को हिंदू सभ्यता ने ही जन्म दिया है।

डॉ. आंबेडकर कहते हैं कि इन वर्गों का अस्तित्व एक कलंक है। यदि इन वर्गों के संदर्भ में हिंदू समाज को मापा जाय, तो कोई भी इसे सभ्य समाज नहीं कह सकता। वे यह भी कहते हैं कि किसी अन्य देश में यदि ऐसी जातियां रहतीं तो लोग अपने मन को टटोलते और उनके मूल का पता लगाते। पर इस बारे में हिंदुओं के कानों पर जूं तक नहीं रेंगती। हिंदुओं ने न तो यह जानने की कोशिश की कि ये वर्ग कहां से आए और न उनके प्रति अपने किसी दायित्व को महसूस किया।

ऐसा उन्होंने क्यों नहीं किया? इस सवाल का जवाब भी इस सवाल के जवाब में निहित है कि ब्राह्मणों में कोई वाल्तेयर पैदा क्यों नहीं हुआ? डॉ. आंबेडकर के अनुसार सच्चाई यह है कि ब्राह्मणों के हाथों में जो सत्ता है, वह हिंदू सभ्यता की देन है जिसमें उसे सर्वोच्च स्थान प्राप्त है और निम्न जातियों को गुलाम बनाकर इस तरह की कठोर व्यवस्था में रखा गया है कि वे ब्राह्मणों को चुनौती नहीं दे सकें। डॉ. आंबेडकर कहते हैं कि यह ध्रुव सत्य है कि प्रत्येक ब्राह्मण ब्राह्मणवाद का मुकुट धारण किए हैं, चाहे वह रूढ़िवादी हो या नहीं, वह पुरोहित को या गृहस्थ, विद्वान हो या बुद्धिहीन। ऐसी स्थिति में कोई ब्राह्मण वाल्तेयर कैसे बन सकता है? ब्राह्मणों में से यदि कोई वाल्तेयर पैदा हो भी गया, तो वह उस सभ्यता के लिए प्रत्यक्ष खतरा बन जाएगा, जिसका निर्माण ब्राह्मणों की श्रेष्ठता बनाए रखने के लिए किया गया है।

अतः जब तक भारत की इस सामाजिक संरचना को नहीं समझा जाएगा, तब तक न तो दलित चेतना को समझा जा सकता है और न दलित विमर्श को। इस सामाजिक संरचना में 'जरायमपेशा' जातियों, आदिम जनजातियों और अछूत जातियों के विशाल समूह के अस्तित्व और उपस्थिति को एक सभ्य समाज का प्रमाण नहीं माना जा सकता। यह विशाल आबादी कैसे अस्तित्व में आई? हिंदू समाज के पास इसका कुछ पौराणिक मिथकों के सिवा कोई वैज्ञानिक जवाब नहीं है। लेकिन इन वर्गों में, अंग्रेजी राज तथा ईसाई मिशनरियों के प्रयासों से आई शैक्षिक जागृति के कारण अपने इतिहास को खोजने के क्रांतिकारी प्रयास हुए हैं। इन प्रयासों से जो स्थापनाएं सामने आई हैं, उनमें हिंदुओं के सारे पौराणिक मिथक ध्वस्त हो गए हैं।

इन वर्गों में उभरी प्रतिभाओं ने अपनी योग्यता से पूरे विश्व को प्रभावित किया और इस मिथक को तोड़ दिया कि वे सिर्फ दास-कर्म करने के लिए ही ईश्वर द्वारा पैदा किए गए हैं। उन्होंने जोरदार ढंग से इस सवाल को उठाया कि किसी को भी जाति के आधार पर दास नहीं बनाया जा सकता। उन्होंने हिंदुओं के धर्मशास्त्र का खंडन करते हुए स्थापना दी कि करोड़ों लोग इसलिए अपराधी, आदिम जनजातियां और अछूत बन गए, क्योंकि विकास के अवसरों से उनको वंचित रखा गया। उन्होंने मानव अधिकारों की दृष्टि से दलितों के मानव अधिकार बहाल करने की आवाज उठायी, जिसके लिए हिंदुओं के धर्मशास्त्र में कोई गुंजाइश नहीं है। उन्होंने हिंदुओं के धर्मशास्त्र को द्विजों का न्यायशास्त्र बताया, जो उनके लिए स्वर्ग की व्यवस्था करता है। दलित वर्गों के लिए नरक की व्यवस्था करने वाले हिंदू धर्मशास्त्रों को उन्होंने मानने से इंकार कर दिया और उसमें आग लगा दी। डॉ. आंबेडकर ने 1927 में महाड़ तालाब के सत्याग्रह में 'मनुस्मृति' को सार्वजनिक रूप से जला कर बीसवीं शताब्दी में दलित विमर्श को नए तेवर दिए थे। इस अवसर पर सम्मेलन ने दो संकल्प पारित किए थे। इनमें एक संकल्प था, 'हिंदू के अधिकारों की घोषणा'। इसमें कहा गया था—

“इस सम्मेलन का दृढ़ मत है कि हिंदू समाज की वर्तमान दयनीय दशा केवल यह दर्शाती है कि किस प्रकार किसी समाज का पतन हो जाता है, जब वह सामाजिक अन्याय को सहन करने लगता है, गलत धार्मिक आस्थाओं का समर्थन करने लगता है। हिंदू समाज का पतन केवल इस कारण हुआ कि आम लोगों ने यह जानने की चेष्टा नहीं



दलित विमर्श जिस सिद्धांत को विकसित करता है, वह भारत के लोगों के बारे में सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने के संबंध में है। आम तौर पर भारत की आबादी का वर्गीकरण भाषाई या धार्मिक आधार पर ही किया जाता है। इस वर्गीकरण से यह तो पता चलता है कि भारत में इतने हिंदू, इतने मुसलमान, इतने ईसाई और इतने सिक्ख आदि रहते हैं। या यह पता चलता है कि भारत में इतने लोग मराठी, इतने तमिल इतने बांगला और इतने लोग गुजराती बोलते हैं पर इसमें विभिन्न जनआंदोलनों का पता नहीं चलता। दुर्भाग्य से समाजशास्त्रियों ने किसी अन्य दृष्टिकोण को अपने अध्ययन का आधार नहीं बनाया। लेकिन डॉ. आंबेडकर ने पहली बार इस ओर ध्यान दिया। वे पहले समाजशास्त्री हैं, जिन्होंने भारत की आबादी के अध्ययन में इस दूसरे दृष्टिकोण को अपनाया। उन्होंने कहा कि भारत में धर्म का वही स्थान है, जो मध्य युग में यूरोप में चर्च का था। अतः धर्म को ध्यान में न रखना भूल होगी। पर धार्मिक दृष्टिकोण को सतही चित्र प्रस्तुत करेगा, वह लोगों का वास्तविक और पर्याप्त चित्रण नहीं कर सकता। इसलिए डॉ. आंबेडकर ने कहा कि यह जानना ज्यादा महत्वपूर्ण है कि सामान्य जनता और उसके विभिन्न वर्गों के लोग भारत में किस प्रकार का जीवन—यापन करते हैं? उनके सामूहिक जीवन की सामाजिक अनिवार्यताएं और आर्थिक जरूरतें क्या हैं? कहां तक वे धर्म से प्रभावित हैं।

अतः जब हम सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण से भारत के लोगों का वर्गीकरण करते हैं, तभी जरायमपेशा जातियों, आदिम जनजातियों और अछूत जातियों के विशाल वर्ग अस्तित्व में आते हैं। तब डॉ. आंबेडकर पूछते हैं — “आदिम जातियों के करोड़ों लोगों को हिंदू सभ्यता क्या देती है? इस सभ्यता के अंतर्गत जो पांच करोड़ (आज 26 करोड़) अछूत न केवल रह रहे हैं, बल्कि जिन्हें इसे सहन करना पड़ रहा है, उन्हें वह क्या देती है? ऐसी सभ्यता के बारे में आदिम जातियां क्या कहेंगी, जिन्हें इसने अपने में शामिल करने का कोई प्रयास नहीं किया है? ऐसी सभ्यता के बारे में जरायमपेशा जातियां क्या कहेंगी, जिन्हें खदेड़कर उसने विवश कर दिया है कि वे अपनी रोजी—रोटी कमाने के लिए जुर्म को अपना धंधा बना लें? यदि वे कहें कि यह सभ्यता नहीं बल्कि सभ्यता के नाम पर एक कलंक है, तो यह क्या अनुचित होगा?”

संयोग से यह लेख ऐसे समय लिखा जा रहा है, जब दक्षिण अफ्रीका के डरबन शहर में नस्लीय भेद भाव के खिलाफ विश्व सम्मेलन हो रहा है। भारत सरकार और भारत के हिंदू बुद्धिजीवी दोनों ही भारत की जाति समस्या को नस्लीय समस्या मानने के पक्ष में नहीं हैं और इसी आधार पर वे दलित संगठनों के डरबन जाने के भी खिलाफ हैं। जाति और नस्ल के भेद पर हम विस्तृत चर्चा अगले अध्याय में करेंगे। यहां प्रसंगवश यह प्रश्न जरूर गौरतलब है कि जब भारत में नस्लीय भेद नहीं है, जाति और नस्ल अलग—अलग हैं, तो इन जरायमपेशा जातियों, आदिम जनजातियों तथा अछूत जातियों को हिंदू सभ्यता ने अपने अंदर शामिल क्यों नहीं किया? करोड़ों लोगों को अछूत बनाकर उनके साथ भयानक सामाजिक अलगाव क्यों हैं। डरबन के लिए दलित दावे का विरोध करने वाला कोई भी हिंदू इस प्रश्न के उत्तर में बगलें झांकने के सिवा कुछ नहीं कर सकता।

दरअसल, उलझाव वहां पैदा होता है, जहां दलित समस्या को सिर्फ दलितों की समस्या मान लिया जाता है। अधिकांश हिंदू बुद्धिजीवियों की उलझन की वजह यही है। वे दलित समस्या में भी अलगाववादी दृष्टिकोण अपनाते हैं। इसलिए जब वे इस समस्या पर विचार करते हैं, तो यह उन्हें अपनी समस्या प्रतीत नहीं होती। उन्हें यह भी अहसास नहीं होता कि यह पूरे समाज की समस्या है।

लेकिन दलित चिंतक इस अलगाववादी दृष्टिकोण से नहीं सोचते। वे दलित—समस्या को राष्ट्रीय समस्या के रूप में देखते हैं। डॉ. आंबेडकर ने अनेक स्थलों पर जोर देकर इस बात को कहा है कि दलितों का उत्थान राष्ट्र का



होता। इसका कारण है वे विशेषाधिकार जो अन्य श्रमिक वर्ग (सवर्ण वर्ग) को प्राप्त हैं और दलित श्रमिक वर्ग को प्राप्त नहीं हैं। एक गरीब ब्राह्मण और एक गरीब दलित के बीच भाईचारा या समान हितों के लिए संघर्ष की समान चेतना विकसित नहीं हो पाती है तो इसलिए कि वर्णव्यवस्था में दोनों की सामाजिक स्थितियां भिन्न-भिन्न हैं। ब्राह्मण उच्च हैं, तो दलित नीच माना जाता है। यह धर्म की स्थिति है। इसलिए इस धार्मिक व्यवस्था से लड़े बिना आर्थिक वर्ग दृष्टिकोण से दलित समस्या को हल नहीं किया जा सकता।

डॉ. आंबेडकर की मान्यता थी कि संपत्ति की बराबरी ही वास्तविक सुधार नहीं है। समाजवादियों से उनका सवाल था कि क्या वे आर्थिक सुधार, सामाजिक व्यवस्था में सुधार लाए बगैर कर सकते हैं? उन्होंने लिखा है कि समाजवादियों ने इस प्रश्न पर विचार ही नहीं किया है। वे आगे लिखते हैं कि सामाजवादी या साम्यवादी यदि क्रांति से पूर्व जाति को महत्व नहीं देते, तो क्रांति के बाद अवश्य ही जाति पर ध्यान देने के लिए मजबूर हो जाएंगे। क्योंकि, जाति एक ऐसी राक्षस है, जो आप कहीं भी और किसी भी दिशा में जाएं, वह आपका रास्ता जरूर काटेगा। अतः जब तक इस राक्षस को नहीं मार दिया जाता है, तब तक न तो कोई राजनैतिक सुधार किया जा सकता है और न ही आर्थिक सुधार किया जा सकता है।

मार्क्सवादियों के लिए यह सवाल गौरतलब होना चाहिए कि वे दलितों में मार्क्सवादी आंदोलन को मजबूत करने में सफल क्यों नहीं हो सके? इस सवाल को एक दूसरे सवाल के साथ जोड़कर भी विचार करने की जरूरत है। यह सवाल है कि क्या कारण है कि मार्क्सवाद का सारा नेतृत्व ब्राह्मणों के हाथों में रहता और आज भी है? यदि मार्क्सवाद मजदूर वर्ग का दर्शन है और कार्ल मार्क्स सर्वहारा के नायक हैं, तो उनकी जरूरत ब्राह्मणों को क्यों है? यह उल्टी गंगा कैसे प्रवाहित हुई? इसका अर्थ यही है, जैसा कि डॉ. आंबेडकर का भी मत है कि भारत में मार्क्सवाद गलत हाथों में जाकर अपना लक्ष्य खो बैठा? इस ब्राह्मण नेतृत्व ने वास्तविक सर्वहारा दलित वर्ग के हाथों में नेतृत्व नहीं जाने दिया। परिणाम यह हुआ कि मार्क्सवाद भारतीय सामाजिक यथार्थ से जुड़कर क्रांति करने में असफल रहा।

इस विषय पर आपको विस्तृत चर्चा आगे मिलेगी जहां हमने विविध आंदोलनों पर विचार किया है। यहां संक्षेप में मैं आपको यह बताना चाहता हूँ कि जाति और वर्ग की धारणाओं का आपसी रिश्ता क्या है? इस पर डॉ. आंबेडकर ने अपने निबंध "वह समाज जिसे हिंदुओं ने बनाया" में विस्तार से प्रकाश डाला है। इस निबंध से मैं कुछ तथ्य आपके समक्ष रखने की कोशिश करता हूँ। इसमें संदेह नहीं कि जाति की धारणा वर्ग की धारणा से भिन्न है और उसके प्रतिकूल भी है। लेकिन फिर भी जाति व्यवस्था एक वर्ग व्यवस्था को भी मान्यता देती है। जिस प्रकार हिंदू अनेक जातियों में बंटे हुए हैं, उसी प्रकार जातियां भी विभिन्न वर्गों में बंटी हुई हैं। यानी, हिंदू में जाति भावना भी होती है और वर्ग भावना भी होती है। लेकिन, उसमें जाति भावना या वर्ग भावना इस बात पर निर्भर करती है कि उसका टकराव किस जाति से होता है। जिस जाति से उसका टकराव होता है, यदि वह उसके वर्ग की जाति है, तो उसमें अपनी जाति श्रेष्ठता की भावना होती है। यदि जाति उसके वर्ग के बाहर की होती है, तो उसमें वर्ग श्रेष्ठता आ जाती है।

दरअसल जाति वर्ग व्यवस्था का विकसित रूप नहीं है। जो ऐसा मानते हैं, वे गलती करते हैं। जाति वर्ण का विकृत रूप है। जहां जाति ने वर्ण व्यवस्था को पूर्णतः विकृत कर दिया है, वहां उसने वर्णव्यवस्था से वर्गव्यवस्था उधार ले ली है। इसे आप इस तरह से समझ सकते हैं। हिंदुओं की दो शाखाएं हैं – 1. सवर्ण हिंदू और 2. अवर्ण हिंदू। प्रथम शाखा में जातियों के दो वर्ग हैं – 1. आदिम और 2. शूद्र। दूसरी शाखा अर्थात् अवर्ण हिंदुओं में जातियों के दो वर्ग

